शोध मंथन Vol. XIV No.II Apr.-June 2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण

प्राप्तिः 05.04.2023
स्वीकृतः 20.06.2023

डॉ० रेनू जैन
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, नानौता, सहारनपुर (उ०प्र०)
ईमेलः *renujain0011@gmail.com*

25

सारांश

अपनी इन्द्रियों को जीतने वाले गुणों के उपासक जैन धर्म के अनुसार संसार में सब कुछ अपने प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही हो रहा है। जैन धर्म में प्रकृति के उपभोग के स्थान पर उपयोग पर बल दिया जाता है। जैन दर्शन ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार नहीं करता है किन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर अथवा अपनी असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहज प्राकृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप कर कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है, जिससे सहज सन्तुलन के बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो गया है। वनस्पतियों, प्राणियों और मानव जाति सहित सभी सजीवों और उनके साथ सम्बन्धित भौतिक परिसर को पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण शब्द के सूक्ष्म अवलोकन से यह भाव उत्पन्न होता है कि सभी ओर से आवरण पर्यावरण है। जैन धर्म जीवन का अस्तित्व केवल मनुष्य पशु या कीड़े–मकोड़ों में ही नहीं मानता अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति इन पंचभूतों में भी उसका अस्तित्व स्वीकार करता है। जीवन के प्रति यह सूक्ष्म दृष्टि जैन दर्शन की अपनी विशिष्ट स्वीकृति है। जैन दर्शन जहाँ प्राणी विनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है, वहाँ विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार करता है परन्तु परिणाम की दृष्टि से दोनों एक ही केन्द्र पर आकर मिल जाते हैं। सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, जो स्वयं जीने का इच्छुक है, वह दूसरों को मारने या नष्ट करने की बात कैसे सोच सकता है ? इसीलिए यदि मनुष्य में संयम की प्रवृत्ति विचार व आचरण से जुड़ जाये तो पर्यावरण असन्तुलन की समस्या का निराकरण सम्भव है। जैन धर्म समस्त जीवों के अस्तित्व एवं विकास में आस्था रखता है। अतः पर्यावरण संरक्षण के लिए मानव चेतना को जागृत करना आवश्यक है। जन जागरण के द्वारा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारते हुए सभी जीवों को अपने समान मानते हुए उनके प्रति मैत्री भाव रखते हुए मानव सुखी जीवन जी सकता है।

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।[1]

अर्थात् हे भगवन मेरी आत्मा हमेशा सम्पूर्ण जीवों में मैत्रीभाव, गुणी जनों में हर्षभाव, दुःखी जीवों के प्रति दयाभाव और विपरीत व्यवहार करने वाले शत्रुओं के प्रति माध्यस्थ भाव को धारण करे।

मुख्य बिन्दु

पुदगल, निग्रह, अहिंसा, परस्परोपग्रहो, जीवानाम् पृथ्वीकायिक, षडावश्यक, अस्तेय, अपरिग्रह, समारम्भ।

पर्यावरण शब्द वातावरण का पर्याय है। ''परितः आवृणोतीति पर्यावरणम्'' इसके अनुसार जो चारों ओर से हमें आवृत करता है वह पर्यावरण है। अतः हमारे चतुर्दिक जो कुछ भी है वह हमारा सम्पूर्ण पर्यावरण या परिस्थितिकी है। सूक्ष्मता से इसे दो दृष्टियों से देखा जा सकता है– भौतिक पर्यावरण एवं आध्यात्मिक पर्यावरण। जीव मात्र की दैहिक आवश्यकताएं भूमि, जलवायु, वनस्पति आदि से पूरी होती हैं, जबकि आध्यात्मिक पर्यावरण से आत्मा सन्तुष्ट होती है। आत्म सन्तुष्टि से न केवल आध्यात्मिक अपितु भौतिक पर्यावरण भी शुद्ध होता है। जीव सृष्टि एवं वातावरण का परस्पर सम्बन्ध ही पर्यावरण है।

पर्यावरण का सम्बन्ध विश्व के प्राणी मात्र के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण, पर्यावरण प्रदूषण व पर्यावरण संरक्षण आज के सम्पूर्ण विश्व के लिए चेतावनी, चिन्तन व चेतना के विषय हैं। आज के भौतिकतावादी युग में मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इतना अधिक किया है कि प्रकृति में असन्तुलन के कारण अति वृष्टि, अना वृष्टि, सूखा, बाढ़, भूचाल, प्रचण्ड गर्मी, ठण्डक आदि अन्य अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। प्राणी अथवा प्रकृति के बीच सन्तुलित वातावरण बनाये रखना ही पर्यावरण संरक्षण है। भारतीय संस्कृति में विशेषकर जैन संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण एवं अक्षुण्णता पर केवल अनुचिन्तन ही नहीं किया गया है, अपितु इसका मानवी व्यवहारिक जीवन में मूर्त रूप देकर इस दिशा में अभूतपूर्व सार्थक प्रयास किया गया है। इस प्रकार जैन धर्म प्रारम्भ से ही पर्यावरण की शुद्धता बनाये रखने में सतत, सचेष्ट एवं जागरूक है।[2]

जैन साहित्य में वर्णित जैन धर्म के सिद्धान्त बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वह सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय से बढ़कर सर्वजीव हिताय और सर्वजीव सुखाय तक है। सम्पूर्ण जैन साहित्य में पर्यावरण विषयक सूक्ष्म चिन्तन व्याप्त है। यह चिन्तन जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों से अनुप्राणित है। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव पर्यावरण के प्रथम संवाहक महापुरुष थे। उन्होंने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य और कला का सिद्धान्त दिया। पथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति में जीव की अवधारणा दी और पर्यावरण की परिधि को असीमित कर दिया। जैन दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण पर्यावरण में अनन्त जीव हैं। अतः किसी भी रूप में उनकी हिंसा पर्यावरण के प्रदूषण को उत्पन्न करेगी। महावीर ने **''जीओ और जीने दो''** का सिद्धान्त दिया। आचारांग, जो जैन साहित्य का प्राचीन ग्रन्थ है, में षटकाय जीव निकाय के संरक्षण की बात प्रमुखता से कही गयी है। आचारांग के अनुसार ''सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जउ''[3] अर्थात् सभी प्राणी जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। ''सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्ख पडिकूला''[4] अर्थात् सभी प्राणियों को सुख अनुकूल और दुःख प्रतिकूल है। अतः किसी भी जीव की किसी भी प्रकार अर्थात् नौ कोटियों से (मन, वचन, काया से न करे, न करवाये न करने वाले का अनुमोदन करे) हिंसा नहीं होनी चाहिए। जैन आचार्यों के द्वारा समस्त सम्बन्धों को छोड़कर वीतरागता की प्राप्ति के लिए प्रेरणा दी जाती है, वहीं प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य भाव को भी सिखाया जाता है। जैन साहित्य में यह तथ्य व्यक्त है कि जो प्राणियों के प्रति उत्कृष्ट भावना को रखता है कि विश्व में स्थित सभी जीव सुखी रहें वहीं तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध को करता

है तथा कालान्तर में तीर्थंकर भी होता है। वात्सल्य तीर्थंकर प्रकृति का कारण है।[5] वीतरागता व वात्सल्य में सतही स्तर पर विरोध प्रतीत होता है, किन्तु आध्यात्मिक विकास में प्राणी मात्र के प्रति स्नेह भाव वीतरागता के समीप प्राप्त होने वाले के समान होता है। इसीलिए मोह से विरक्ति आवश्यक है।

क्रोध आदि कषाय, राग–द्वेष, मात्सर्य आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का निग्रह करके दया, स्नेह, प्रमोद, सौहार्द आदि गुणों के विकास में पर्यावरण की सुरक्षा होती है। निग्रह भाव ही पर्यावरण है। इस प्रकार कहा जा सकता है क्योंकि निग्रह, निरोध, निवृत्ति, विरति विजय आदि[6] शब्द पर्यावरण को ही अभिव्यक्त करते हैं।

सर्वेषामिव जीवानाम् हिंसायकविरति स्तथा।
शान्त्या हि सर्वदुखानां .....।।[7]

अर्थात् सभी जीवों की हिंसा सम्बन्धी विरति तथा शान्ति से ही सभी दुःखों का... कथित पद्य में जीवों की सुरक्षा पर बल दिया गया है तथा यह भावना व्यक्त की गयी है कि वैसा कार्य करो जिससे सर्वत्र शान्ति का वातावरण उत्पन्न होवे, पर्यावरण में भी यही भावना है। यदि जैन ग्रन्थों के इस मत को स्वीकार करते हैं तो न केवल मनुष्यों की सुरक्षा अपितु समस्त प्रकृति के साम्राज्य की सुरक्षा भी हो सकती है। भगवती आराधना में ''प्राणी के प्राणों की सुरक्षा करना''[8] शब्द समस्त प्राणी जगत के प्राणों की सुरक्षा पर बल देता है, क्योंकि इस शब्द में न केवल पाँच इन्द्रिय अपितु चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय दो इन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि एक इन्द्रिय तक जीवों के प्राणों की सुरक्षा के लिए निर्देश प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार परिहार, संवरण, व्यावृत्ति आदि शब्द भी इस दिशा में जीवों की सुरक्षा सूचित करते हैं।[9]

जैन दर्शन अचेतन पदार्थों की उपयोगिता को स्वीकार करता है। भौतिक पदार्थ जीव द्रव्य को दूषित करने के लिए असमर्थ हैं किन्तु मिश्रित अवस्था में यह कहना कठिन है। आचार्य उमा स्वामी ने तत्वार्थ सूत्र कहा है कि सुख–दुःख, जीवन–मरण में भी पुद्गलों का जीव पर उपकार है।[10]

पर्यावरण का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। जीव समूह का सूक्ष्म परिस्थिति तन्त्र से लेकर विशाल पारिस्थितिकी तन्त्र तक क्षेत्र कल्पित है। हमारे चारों तरफ विद्यमान जैविक–अजैविक तत्व मानव जीवन को प्रभावित करते हैं, वे सभी तत्व पर्यावरण के अन्तर्गत हैं। पथ्वी, जल, वायु, नदी, समुद्र, पर्वत, जीव–जन्तु, वनस्पतियां, उद्योग, परिवहन के साधन, धार्मिक कार्य, आर्थिक कार्य, ऐतिहासिक घटना और भौगोलिक संरचनाएं आदि सभी पर्यावरण के ही क्षेत्र हैं।

जैन दर्शन में पर्यावरण के क्षेत्र विषयक ज्ञान के लिए यह ज्ञातव्य है कि ''जहाँ जहाँ जीव है, वहाँ–वहाँ पर्यावरण है। निश्चय से जीव एक द्रव्य है। वहाँ सत् द्रव्य का लक्षण है **''सत् द्रव्य लक्षणम्।।''[11]**

चेतना लक्षण वाला जीव है। **''चेतना लक्षणो जीवः''[12]** इसके अतिरिक्त जहाँ परिस्पन्दन, श्वासोच्छवास और संवेदना रहती है, वह जीव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में जीवत्व की अवधारणा है। आचारांग सूत्र के पांच अध्यायों में षटकायिक जीवों का सविस्तार वर्णन है। आचार्य उमा स्वामी ने तत्वार्थ सूत्र में जीव के भेद बताते हुए लिखा है –

संसारिणस्स्थावरा[13]पृथिव्यप्तेजो–वायु–वनस्पतयः स्थावरा।[14]

अर्थात् संसारी जीव त्रस एवं स्थावर दो प्रकार के होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक ये पांच स्थावर जीव हैं। दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चौ इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को त्रस कहते हैं।[15]

जैन साहित्य में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जीवत्व से ओतप्रोत है और सम्पूर्ण पर्यावरण एक जीवत्व इकाई है। इसके प्रति स्वत्व और संरक्षण का भाव होना चाहिए। आचार्य उमा स्वामी जी का सूत्र– **परस्परोग्रहो जीवानाम्**[16] अर्थात् आपस में एक दूसरे की सहायता करना जीवों का उपकार है। जगत में निरपेक्ष जीवन नहीं रह सकता है। एक बालक की योग्यता के निर्माण में माता–पिता, गुरु समाज, शासन संगति व पर्यावरण का उपकार जुड़ा होता है। व्यक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं ग्रहों की अदृश्य शक्ति से प्रभावित होता है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल द्रव्य का उपकार व्यक्ति पर रहता है। यदि कोई जीव हमारा सहायक है तो उसकी सुरक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

जैन धर्म जहाँ प्राणी विनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है, वहाँ विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार करता है।

- पृथ्वी कायिक हिंसा से बचकर भूमि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है। महावीर स्वामी ने कहा कि विवेकी व्यक्ति हिंसा के परिणाम को जानकर स्वयं पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ (साधनों को जुटाना) न करें, दूसरों से उसका समारम्भ न करवायें तथा समारम्भ करने वालों का अनुमोदन भी न करें।[17] नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी सम्बन्धी क्रिया में व्याप्त होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करने वाला व्यक्ति न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवों की ही हिंसा करता है, अपितु नाना प्रकार के अन्य जीवों की भी हिंसा करता है।[18] उपरोक्त उदाहरणों में महावीर स्वामी ने पृथ्वी कायिक हिंसा का निषेध किया है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वी का जबरदस्त दोहन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों की आशंका है यदि ऐसा ही चलता रहा तो ये भण्डार कुछ ही समय में समाप्त हो जायेंगे। यदि यह दोहन बन्द होगा तो पृथ्वीकायिक हिंसा समाप्त होगी व वातावरण का सन्तुलन भी गहरे अर्थ में प्रभावित होगा।
- जैन धर्म की दृष्टि से पानी एक सजीव तत्व है। जल प्रदूषण से अपकाय की हिंसा तो होती ही है, पर वनस्पति, द्वीन्द्रिय प्राणी, मछलियों यहाँ तक की उसका प्रदूषण मनुष्य को भी प्रभावित करता है। भगवान् महावीर ने कहा है –''तंसे अहियाई तंसे अबोहिये' अर्थात् जल की यह हिंसा मनुष्य के अहित तथा अबोधि का कारण है।
- जैन दर्शन के अनुसार वायु प्रदूषण अग्नि काय के जीवों के कारण है, क्योंकि वातावरण में करोड़ों टन धुआँ, रेत आदि छोड़े जा रहे हैं। महावीर ने कहा – अग्नि के जीवों को पीड़ित करना स्वयं अपने को ही उत्पीड़ित करना है। निश्चय ही अग्निकाय की इस विनाशलीला को जानने वाला संयमित जीवन जीने लगता है।
- भगवान् महावीर ने कहा– जो सत्य को जानता है वही मौन को जानता है और जो मौन को जानता है, वही सत्य को जानता है।[19] इस उक्ति में गहरा अर्थ छिपा है। आज यह स्पष्ट हो गया है कि शब्द या ध्वनि मनुष्य के लिए कितनी घातक हो सकती है। ध्वनि प्रदूषण आज के युग की गम्भीर समस्या बन गया है। यातायात की खड़खड़ाहट, विमानों का कर्णभेदी स्वर, कल–कारखानों की तरह–तरह की मशीनों की घड़घड़ाहट, वातानुकूलित यंत्र, पंखे, रेफ्रिजरेटर का सूक्ष्म कम्पन, जुलूसों का गगनभेदी घोष, भिन्न–भिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्र, मोबाइल आदि आवाज न जाने कितने प्रकार से हमारे कानों पर आक्रमण करती रहती हैं। यदि ध्वनि प्रदूषण

पर नियंत्रण नहीं हुआ तो वैज्ञानिकों को आशंका है कि कुछ दशकों में मानव जाति के बहरा हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा।

- वनस्पति काय की हिंसा अर्थात् वनों की अन्धाधुन्ध कटाई से अनेक प्रकार के दुष्परिणाम स्पष्ट हैं। एक ओर तो इससे प्राण वायु का नाश हो रहा है, दूसरी ओर भूक्षरण को बढ़ावा मिल रहा है तथा भूमि बंजर होती जा रही है। वर्षा के अनुपात में भी अन्तर आ रहा है तथा दूसरी ओर भूक्षरण को बढ़ावा मिल रहा है। महावीर स्वामी ने कहा वर्तमान जीवन के लिए जो व्यक्ति वनस्पति की हिंसा करता है या दूसरे से करवाता है, या करने का अनुमोदन करता है तो वह हिंसा मनुष्य जाति के अहित के लिए है। वनस्पति काय की हिंसा जीवन नहीं मृत्यु है। जैन धर्म में मनुष्य और प्रकृति को समान गुण सम्पन्न माना गया है और इसकी व्याख्या करते हुए बताया गया है कि दोनों जन्म लेते हैं, वृद्धि करते हैं, दोनों जल ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि जैन धर्म में वनस्पति काय आदि प्राणी को भी नष्ट करने का निषेध किया गया है।[20]

आदि पुराण में वन संरक्षण एवं सघन वनों का जो वर्णन है, उसे अरण्य संस्कृति कहा जाता है। इस संस्कृति के अनुसार सम्पूर्ण विश्व एक वृक्ष है, जिसे लोक कहा गया है। लोक के एक भाग पर मानव रहता है जो जम्बूदीप के नाम से जाना जाता है। मानव प्रारम्भ में कल्पतरु पर निर्भर रहता था। यह संकेत करता है कि वृक्षों का जीवन में अत्यधिक महत्व है। वृक्ष हमें शुद्ध वायु, जल, फल, ईंधन आदि प्रदान करते हैं। अतः वृक्षों का संरक्षण और संवर्धन हमारा कर्तव्य है। वृक्षों में भूमि, वायु व ध्वनि प्रदूषण को अवशोषित करने की सामर्थ्य है। पदमपुराण में कहा गया है ''प्रतिष्ठा ते गमिष्यन्ति यैः,वृक्षा समारोपिताः''। वरांगचारित व धर्मशर्माभ्युदय में वनों, उद्यानों, वाटिकाओं तथा नदी के तीरों पर वृक्षारोपण का वर्णन है। इसके अतिरिक्त तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिह्न भी किसी न किसी रूप में पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक हैं।

महावीर ने अपने विहार के समय हर प्राणी का पूरा ध्यान रखा। पृथ्वी काय, जल काय, अग्निकाय, वायु काय, शैवाल, बीज और हरी वनस्पति तथा त्रस काय जीव है, ऐसा जानकर वे विहार करते थे।

धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए जैनागमों में एक महत्वपूर्ण गाथा कही गयी है–

धम्मो च वत्थुसहावो, खामादि भावों या दसविहो धम्मो, रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खण धम्मो।

अर्थात् वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमा मार्दव आर्जव आदि दस आत्मा के भाव धर्म हैं।

रत्नत्रय (सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान एवं सम्यक चरित्र) धर्म है तथा जीवों का रक्षण करना धर्म है। पर्यावरण की शुद्धि के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के धर्म की बड़ी सार्थकता है।

जैन धर्म में श्रमणाचार एवं श्रावकाचार की वैज्ञानिकता को पर्यावरण के सन्दर्भ में प्रतिष्ठित किया गया है। जैन मुनि पंचमहाव्रत, पंचसमितियां, पंचेन्द्रिय निग्रह, षडावश्यक एवं स्नान, त्याग आदि सात गुण कुल 28 मूल गुणों का पालन करते हैं जो विशुद्ध वैज्ञानिक एवं पर्यावरण संरक्षण के अनुकूल है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य, आचार्य श्री उमा स्वामी आचार्य श्री समन्तभद्र आदि द्वारा रचित ग्रन्थों में श्रावकों के लिए आचार संहिता है, जो किसी न किसी रूप में पर्यावरण संरक्षण हेतु अमूल्य है। सामान्यतः श्रावक के आठ मूलगुण, पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत सर्वमान्य आचार है। मद्य, माँस,

मधु तथा पांच उदम्बर फलों का त्याग ये गृहस्थ के आठ मूलगुण हैं। जुआ, माँस–मदिरा, वेश्या, परदाराभिलोभन चोरी एवं शिकार ये सप्त व्यसन व्याज्य है। प्रतिदिन देवपूजा, गुरुपासना, शास्त्र स्वाध्याय, संयम धारण, तपश्चरण और दान श्रावक के छः कर्तव्य हैं।

अहिंसा एवं अपरिग्रह का सिद्धान्त जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण हेतु मूल मंत्र की भाँति कार्य करता है। पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रकृति संरक्षण भौतिक दृष्टि है, किन्तु समस्त आदतों पर नियंत्रण आध्यात्मिक दृष्टि है। आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार अनन्त इच्छाएं पर्यावरण के लिए विनाशकारी है, किन्तु संयम पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करता है। आज के भौतिक जगत में तथाकथित विकास की अनन्त दौड़ में शामिल होकर हम पर्यावरण के साथ एक दिन प्राणी मात्र के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिह्न लगायेंगे किन्तु इसके विपरीत अनन्त इच्छाओं पर अंकुश के माध्यम से पर्यावरण सन्तुलन में अपना योगदान दे सकेंगे। सुख की आसक्ति पूर्ण रूप से नहीं छोड़ी जा सकती है किन्तु इच्छाओं पर नियमन तो किया जा सकता है। पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकते किन्तु निरर्थक हिंसा तो छोड़ी जा सकती है। जैन धर्म की अहिंसा एवं अपरिग्रह में पर्यावरण संरक्षण की मौलिक शक्तियाँ अन्तर्निहित है। अतः जैन धर्म के अहिंसा एवम् अपरिग्रह के सिद्धान्तों का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार कर एवम् संयम को जीवन में अपनाने पर हम पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. आचार्य, श्रीमद् अमितगति. (2021). सामयिक पाठ. श्री कुंदकुंद कहान पर्माथिक ट्रस्टः मुंबई. पृष्ठ **1.**
2. जैन, प्रो0 ऋषभचन्द. (2008). वैशाली इंस्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन न0 20 प्रकृत. जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान. वसोकुण्डः मुजफ्फरनगर. पृष्ठ **75.**
3. आचारांग (आयारो). जैन विश्व भारती लाडनूं. 1, 1, 1.
4. आचारांग (आयारो). जैन विश्व भारती लाडनूं. 1, 2, 3, 63.
5. सिद्धांतशास्त्री, पं0 कैलाशचंद. (1999). आचार्य उमास्वामी (उमास्वाति) तत्वार्थ सूत्र. भारतवर्षीय दिगंबर जैन संघः चौरासी मथुरा. 6/24.
6. वर्णी, जिनेंद्र. (2002). जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश. भारतीय ज्ञानपीठः 18, इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली. भाग 2/335.
7. संत, ऐलाचार्य तिरुवल्लुवर. (2000). कुरलकाव्य. भारतीय ज्ञानपीठः 18, इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली. पृष्ठ **27.**
8. सिद्धांतशास्त्री, पंडित कैलाशचंद. (2004). आचार्य श्री शिवार्य–भगवती आराधना. जैन संस्कृति संरक्षक संघः सोलापुर. पृष्ठ **598.**
9. सिद्धांतशास्त्री, पंडित कैलाशचंद. (2004). आचार्य श्री शिवार्य–भगवती आराधना. जैन संस्कृति संरक्षक संघः सोलापुर. पृष्ठ **596.**
10. सुख–दुख–जीवित–मरणोपग्रहाश्च. तत्वार्थ सूत्र. 5/20.
11. तत्वार्थ सूत्र 5/29.

12. आचार्य, पूज्यपाद. (2003). सर्वार्थ सिद्धि. भारतीय ज्ञान पीठः 18, इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली. अध्याय 1/4/18.
13. तत्वार्थ सूत्र 2/12.
14. तत्वार्थ सूत्र 2/13.
15. तत्वार्थ सूत्र 2/14.
16. तत्वार्थ सूत्र 2/21.
17. तं परिण्णाम मेहावी नेव सवं पुढवि–सत्यं सयारंभेज्जा नेव ण्णेहि पुढवि–सत्यं समारंभावेज्जा, नेवण्णे पुढवि–सत्यं समारंभेते समणु जाणेज्जा'. आचारांग 1–34.
18. जमिणं विरुवेरूवेहिं सत्थेहि पुढवि– कम्मसमासरंभेण पुढवि–सत्थं समारंभेमाणे अण्णेवेणे गरुवे पाणे विहंसई. आचारांग 1–27त्र
19. जं सन्मंति पासह तं भोणंति पासह. आचारांग 4–51.
20. (2019). भगवती सूत्र आराधना. *Journal of Advance Scholar Research in Allied Education.* vol. 16. issue no. 1. पृष्ठ **1125.**